राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ कंपनी आवेदन संख्या 24/2018

सहायक वाणिज्यिक कर अधिकारी, वार्ड-॥, सर्कल-ओ, जयपुर, राजस्थान।

----याचिकाकर्ता

बनाम

मैसर्स पुनुसुमी इंडिया लिमिटेड, बी-16, मीरा मार्ग, बानी पार्क, **जयपुर माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय**, जयपुर बेंच, **जयपुर से संबद्ध शासकीय परिसमापक के माध्यम से।**

----प्रत्यर्थी

एकलपीठ कंपनी आवेदन संख्या 6/2020 से संबद्ध

सहायक वाणिज्यिक कर अधिकारी, वाणिज्यिक कर विभाग, वार्ड-द्वितीय, सर्कल- हजहांपुर, अलवर, **राजस्थान।**

----याचिकाकर्ता

बनाम

माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ, **जयपुर से जुड़े आधिकारिक परिसमापक** के माध्यम से मैसर्स **वनस्थली टेक्सटाइल्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड।**

----प्रत्यर्थी

एकलपीठ कंपनी आवेदन संख्या 4/2021

अतिरिक्त आयुक्त (विधि) वाणिज्यिक कर विभाग, **राजस्थान**, जयपुर।

----याचिकाकर्ता

बनाम

मैसर्समाननीय राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ, **जयपुर से जुड़े आधिकारिक परिसमापक के माध्यम से केसरी वनस्पति प्रोडक्ट्स लिमिटेड**, सी-स्कीम, जयपुर

याचिकाकर्ता (गण) की ओर से	:	**अधिवक्ता द्वारा श्री** शीतांशु शर्मा । **श्री आयुष** सिंह, अधिवक्ता, श्री पुनित सिंघवी, **अधिवक्ता की ओर से। पारीक एवं** श्री एम.एस.सिंघवी, **सहायक जनरल अधिवक्ता।**
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	**श्री राहुल लोढ़ा**, अधिवक्ता और श्री विजय **चौधरी**, अधिवक्ता।
परिसमापन में कंपनी की ओर से	:	**श्री रुवित कुमार, आधिकारिक परिसमापक।**

माननीय न्यायमूर्ति अशोक कुमार गौड़

आदेश

रिपोर्टेबल

12/05/2022

1. यह आदेश सहायक वाणिज्यिक कर अधिकारी द्वारा कंपनी याचिका संख्या 6/2004 में कंपनी आवेदन संख्या 24/2018, कंपनी याचिका संख्या 28/2003 में कंपनी आवेदन संख्या 6/2020 और कंपनी याचिका संख्या 28/2003 में कंपनी आवेदन संख्या 4/2021 के रूप में दायर दो कंपनी आवेदनों का निर्णय करेगा।

2. यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान दो आवेदनों में शामिल मुद्दा समान है, इस प्रकार इस सामान्य आदेश से, दोनों आवेदनों का निर्णय किया जाता है।

3. यह न्यायालय यह भी पाता है कि आवेदक-वाणिज्य कर विभाग (संक्षेप में 'आवेदक-विभाग') द्वारा दोनों आवेदनों में की गई प्रार्थना अन्य लेनदारों पर प्राथमिकता और वरीयता प्राप्त करने और आवेदक-विभाग के पक्ष में देय राशि को जारी करने के लिए है।

4. यह न्यायालय तथ्यों का वर्णन के उद्देश्य से कंपनी आवेदन संख्या 24/2018 को एक प्रमुख मामले के रूप में लेता है।

5. आवेदक-विभाग ने अनुरोध किया है कि कंपनी मेसर्स पुंसुमी इंडिया लिमिटेड परिसमापन के अधीन है और अधिकारी परिसमापक (संक्षेप में 'ओएल') ने उक्त कंपनी के विरुद्ध बकाया राशि के संबंध में दावे आमंत्रित किए थे। आवेदक-विभाग ने दिनांक 11.08.2004 को संचार के माध्यम से अपना दावा भेजा था और ओएल ने सूचित किया कि दावा निर्धारित प्रारूप में नहीं था और यह काल बाधित था और विलंब को उच्च न्यायालय से माफ किया जाना था।

6. आवेदक-विभाग ने अनुरोध किया है कि इस न्यायालय के समक्ष कंपनी आवेदन संख्या 17/2014 के रूप में एक आवेदन दायर किया गया था और इस न्यायालय ने दिनांक 07.05.2015 के आदेश के तहत दावा दायर करने में देरी को माफ कर दिया था।

7. आवेदक-विभाग ने दस्तावेजी साक्ष्य और शपथ-पत्र के साथ ओएल के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत किया और ओएल ने आवेदक-विभाग से कुछ जानकारी मांगी और उनके द्वारा इसका उत्तर दिया गया।

8. ओएल ने 11.02.2016 को किए गए संचार में फॉर्म-70 भेजा, जिसके तहत आवेदक-विभाग को कंपनी अधिनियम, 1956 (संक्षेप में '1956 का अधिनियम') की धारा 530(1) के तहत अधिमान्य दावे के रूप में 3,19,351/- रुपये की राशि और 1956 के अधिनियम की धारा 529/530 के तहत साधारण दावे के रूप में 32,32,337/- रुपये की राशि की अनुमति दी गई थी।

9. आवेदक-विभाग ने अनुरोध किया है कि उन्होंने संपूर्ण भुगतान को अधिमान्य दावे के रूप में करने के लिए ओएल के साथ अनेक बार पत्र-व्यवहार किए और ओएल ने दिनांक 02.08.2017 के के माध्यम से सूचित किया कि उच्च न्यायालय ने 100% लाभांश घोषित किया था और इसे श्रमिकों के बीच वितरित किया था और परिसमापन कंपनी के क्रेडिट में पर्याप्त धनराशि नहीं थी और संपत्ति आई.एफ.सी.आई. को बेच दी गई थी, जिसने पूरी राशि परिसमापन कंपनी के सुरक्षित लेनदारों के बीच वितरित कर दी थी।

10. आवेदक-विभाग ने अनुरोध किया है कि दिनांक 02.08.2017 को पत्र प्राप्त होने के बाद, उन्होंने फिर से ओएल को एक अभ्यावेदन और अनुस्मारक भेजा और बताया कि

राजस्थान मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 (संक्षेप में '2003 का अधिनियम') की धारा 47 के अनुसार, संपत्ति का पहला शुल्क आवेदक-विभाग के पक्ष में बनाया गया था और ऐसे में आवेदक-विभाग को बकाया राशि का भुगतान करने का अनुरोध किया गया था।

11. आवेदक-विभाग ने दलील दी है कि ओएल आवेदक-विभाग के दावे को अन्य दावों से ऊपर और अधिमान्य मानने में विफल रहा है और 2003 के अधिनियम की धारा 47 के तहत वैधानिक प्रथम आरोप पर विचार करते हुए, आवेदक-विभाग संपूर्ण राशि को अधिमान्य दावे के रूप में प्राप्त करने के लिए पात्र है और जब ऐसी राशि प्राप्त नहीं हुई, तो आवेदक-विभाग इस न्यायालय के समक्ष आवेदन दायर करने के लिए बाध्य हुआ।

12. ओएल ने आवेदन का उत्तर दायर किया है और यह कहा है कि एकलपीठ कंपनी याचिका संख्या 6/2004 में पारित आदेश दिनांक 23.05.2005 के तहत, उच्च न्यायालय द्वारा कंपनी को बंद करने का आदेश दिया गया था और ओएल को समापन की कार्यवाही संचालित करने के लिए परिसमापक के रूप में नियुक्त किया गया था।

13. इस न्यायालय ने दिनांक 16.10.2010 के आदेश के तहत आईएफसीआई को बिक्री/नीलामी के माध्यम से आस्तियों की वसूली करने की अनुमति दी और आईएफसीआई ने कंपनी की संपत्ति 962 लाख रुपये में मेसर्स रिलायबल इंफॉर्मेशन प्राइवेट लिमिटेड को बेच दी और उच्च न्यायालय ने दिनांक 01.12.2011 के आदेश के तहत बिक्री की पुष्टि की तथा 962 लाख रुपये की पूरी बिक्री आय आईएफसीआई के पास रखी थी। ओएल ने आगे दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 10.05.2013 के आदेश के तहत ओएल को परिसमापन कंपनी के श्रमिकों और लेनदारों के दावे आमंत्रित करने का निर्देश दिया था तथा उपरोक्त के उत्तर में, और ओएल को आवेदक-विभाग सहित कर्मचारियों और अन्य लेनदारों से 106 दावे प्राप्त हुए।

14. ओएल ने आगे दलील दी है कि दावों का निर्णय उनके सीए द्वारा किया गया था और न्यायालय ने आईएफसीआई को कर्मचारी भविष्य निधि के दावे के लिए 24,12,410/- रुपये और श्रमिकों के मध्य श्रमिकों के दावे के प्रति दावों की स्वीकार की गई राशि के लिए आनुपातिक आधार पर लाभांश के वितरण के लिए 60,67,612/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया था और न्यायालय ने दिनांक 07.10.2016 के आदेश के तहत ओएल को परिसमापन में कंपनी के कर्मचारियों को 60,67,612/- रुपये और पूर्ण और अंतिम 100% लाभांश के रूप में ईपीएफ के लिए रुपये 24,12,410/- का भुगतान करने की अनुमति दी।

15. ओएल ने आगे दलील दी है कि आवेदक-विभाग का 8,48,285/- रुपये का दावा इस कारण से अपास्त कर दिया गया था कि समापन तिथि के बाद लगाया गया जुर्माना और उस पर लगाया गया 8,48,285/- रुपये का ब्याज कंपनी अधिनियम और दिवालिया कानून के प्रावधानों के तहत एक दिवालिया कंपनी के समापन में स्वीकार्य नहीं था।

16. ओएल ने अनुरोध किया है कि आवेदक-विभाग का नाम भी सरकारी प्राधिकारियों की सूची में शामिल किया गया था, लेकिन भुगतान इस कारण से नहीं किया गया था कि धारा 529क के तहत प्राथमिकता के दावे का भुगतान केवल श्रमिकों को किया गया था तथा ईपीएफ और अन्य राशि समान आधार पर सुरक्षित लेनदारों के बीच वितरित की गई थी तथा आवेदक-विभाग का दावा 1956 के अधिनियम की धारा 530 के अंतर्गत आता है, क्योंकि धन की उपलब्धता की कमी के कारण ओएल द्वारा सरकारी बकाया पर विचार नहीं किया गया था।

17. ओएल ने यह भी दलील दी है कि 2003 के अधिनियम की धारा 47 अधिकारियों को अपने बकाया का दावा करने के लिए कोई विशेष शक्ति प्रदान नहीं करेगी क्योंकि

समापन आदेश पारित होने और कंपनी के बंद होने और अस्तित्व समाप्त होने के बाद कोई दावा कायम नहीं रह जाएगा।

18. श्री एम.एस. सिंघवी, विद्वान महाधिवक्ता ने आवेदक-विभाग के दावे के समर्थन में निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी हैं:-

18क. राजस्थान बिक्री कर अधिनियम, 1994 की पूर्ववर्ती धारा 50 के अनुसार, राजस्थान बिक्री कर अधिनियम के तहत किसी व्यक्ति द्वारा देय कर की राशि या कोई अन्य राशि ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर पहला शुल्क माना जाता था और अधिनियम के लागू होने के बाद 2003 में, उक्त अधिनियम की धारा 47 के अनुसार, किसी व्यक्ति द्वारा देय कर की राशि या कोई अन्य राशि, ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर पहला शुल्क है और इसलिए कर की ऐसी राशि जारी करना ओएल का बाध्यकारी कर्तव्य, जो कंपनी के परिसमापन के कारण देय थी।

18ख. 2003 के अधिनियम की धारा 47 के तहत निहित प्रावधान गैर-अस्थिर खंड के साथ आरंभ होते हैं, और भले ही 1956 के अधिनियम की धारा 529क के तहत प्रावधान हो, परिसमापन में कंपनी के विरुद्ध देय कर और अन्य रकम का भुगतान के उद्देश्य से राशि जारी करने के लिए ओएल की देनदारी से इनकार नहीं किया जा सकता है।

18ग. 1956 के अधिनियम की धारा 529क अधिभावी अधिमानी भुगतानों का प्रावधान करती है लेकिन करों के संबंध में दावा, श्रमिकों के बकाया के दावे की तुलना में राजस्व को निचले स्तर पर नहीं रखा जाएगा।

18घ. 1956 के अधिनियम की धारा 529क की उपधारा (1)(ख) के अनुसार, श्रमिकों के बकाया का ब्याज और ऋण की सीमा तक सुरक्षित लेनदारों का बकाया, उपधारा (1) के परंतुक के खंड (घ) के अनुसार) 1956 के अधिनियम की धारा 529 के अनुसार अन्य सभी ऋणों पर प्राथमिकता दी जाएगी और राज्य के दावे को हराया नहीं जा सकता है और श्रमिकों के बकाया को पूरा करने के बाद राज्य के दावे को प्राथमिकता दी जानी है। राज्य का दावा अन्य सुरक्षित लेनदारों के दावे से ऊपर होगा।

18ड. 1956 के अधिनियम की धारा 529क 24.05.1985 से जोड़ी गई थी और अधिनियम में संशोधन का उद्देश्य केवल श्रमिकों के बकाया का अधिमान्य भुगतान देना था, लेकिन अन्य लेनदारों को केवल कामगार के अधिकारों की रक्षा के कारण अपनी राशि का दावा करने से वंचित नहीं किया गया था।

18च. भारत के संविधान के अनुच्छेद 246(3) के अनुसार, 2003 का अधिनियम राजस्थान राज्य की विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया है, क्योंकि भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की सूची-II की प्रविष्टि-54 के आधार पर, जिसे आमतौर पर 'राज्य सूची' के रूप में जाना जाता है के अनुसार उनके पास मूल्य वर्धित कर लगाने के लिए विधि बनाने की विशेष शक्ति है और उक्त शक्ति राज्य को प्रदान की गई है।

18छ. 2003 के अधिनियम की धारा 47 गैर-अप्रत्याशित खंड वाला एक विशेष कानून है और इस प्रकार, भले ही कंपनी अधिनियम, 1956 जैसा कोई सामान्य कानून हो, जिसे भारत संघ द्वारा अधिनियमित किया गया है (सूची-I की प्रविष्टि-43 [संघ) सूची] की 7वीं अनुसूची भारत का संविधान), एक विशेष कानून होने के कारण राज्य का कानून सामान्य विधि -कंपनी अधिनियम, 1956 पर लागू होगी।

19. श्री एम.एस. सिंघवी विद्वान महाधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:-

(i) एआईआर 1963 एससी 1019 - महेंद्र लाल जैनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (पैरा 20)।

(ii) 2011 (10) एससीसी 727 - कर्मचारी भविष्य निधि आयुक्त बनाम एस्के फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड का आधिकारिक परिसमापक (पैरा 18 से 21)।

(iii) 2018 (4) एससीसी 743 - जयंत वर्मा और अन्य बनाम यूओआई और अन्य (पैरा 40, 41 और 44)।

(iv) 2009 (4) एससीसी 94 - सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम केरल राज्य एवं अन्य (पैरा 111 से 116)।

(v) एआईआर 1988 राजस्थान 16 - मैसर्स जयसिंथ डाइकेम और आदि बनाम मेवाड़ टेक्सटाइल मिल्स लिमिटेड।

20. इसके विपरीत, ओएल की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री विजय चौधरी ने कहा है कि आवेदक-विभाग का दावा इस न्यायालय द्वारा मंजूर नहीं किया जा सकता है क्योंकि 1956 के अधिनियम की धारा 529क में निहित प्रावधान केवल श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं और कंपनी अधिनियम में एक विशेष प्रावधान करके, केवल श्रमिकों के बकाए पर अधिमान्य दावा दिया गया है।

21. अधिवक्ता ने कहा है कि 1956 के अधिनियम की धारा 529क में निहित प्रावधानों का एक अधिभावी प्रभाव है और इसमें एक गैर-अस्थिर खंड है और इस प्रकार, उस कंपनी के संबंध में, जो कंपनी बंद हो गई है, कंपनी अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे और भले ही पूर्ववर्ती राजस्थान बिक्री कर अधिनियम, 1994, या राजस्थान मूल्य वर्धित कर, 2003 में कोई प्रावधान विद्यमान है, लेनदार को भुगतान के संबंध में अधिमान्य उपचार नहीं मिल सकता है और आवेदक-विभाग के साथ किसी अन्य लेनदार की तरह ही व्यवहार किया जाता है और आवेदक-विभाग को सुरक्षित लेनदार नहीं माना जा सकता।

22. ओएल के अधिवक्ता ने यह कहा है कि यदि केंद्र सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण के करों या राजस्व की किसी भी बकाया मांग के लिए कोई अधिमान्य दावा होता, तो उसे विशेष प्रावधान डालकर विधानमंडल द्वारा संरक्षित किया जाता।

23. अधिवक्ता ने यह कहा कि विधानमंडल ने केवल श्रमिकों के बकाया और सुरक्षित लेनदारों के बकाया के हित को ध्यान में रखा है और इस प्रकार, आवेदक-विभाग को श्रमिकों के बकाया के साथ समानता का दावा करके कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

24. ओएल के अधिवक्ता ने कहा है कि 1956 के अधिनियम की धारा 530 भी 1956 के अधिनियम की धारा 529क के प्रावधानों के अधीन समापन में अधिमान्य भुगतान के लिए प्राथमिकता प्रदान करती है और सभी राजस्व, करों, उपकरों सहित अन्य सभी ऋणों की प्राथमिकता प्रदान करती है जिसके तहत कंपनी से अन्य बकाया का भुगतान 1956 के अधिनियम की धारा 530 के अधीन दी गई वरीयता और प्राथमिकता के अनुसार किया जाएगा।

25. अधिवक्ता ने यह कहा कि यदि आवेदक-विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता की व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाता है, तो 1956 के अधिनियम की धारा 530 की उपधारा (1) (क) में निहित प्रावधानों का कोई अर्थ नहीं होगा और इस न्यायालय से कुछ प्रावधानों को जोड़ने या पढ़ने के लिए कहा गया है जो विभिन्न लेनदारों को अधिमान्य भुगतान देने के उद्देश्य से विधान द्वारा अधिनियमित नहीं हैं।

26. ओएल की ओर से आए अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:-

क. 2013 एससीसी ऑनलाइन (केरल) 23815 - द एसो.कॉम. (आकलन) स्पेशल सर्कल, कोल्लम एवं अन्य बनाम ओएल केरल उच्च न्यायालय एवं अन्य।

ख. 2008 एससीसी ऑनलाइन (गुजरात) 309 - गुजरात राज्य बनाम केनगोल्ड (इंडिया) लिमिटेड का ओएल।

ग. सह-याचिका संख्या 11/1996- मेसर्स मिश्रीलाल जैन (पी) लिमिटेड बनाम मेसर्स नैक्रो केमिकल्स लिमिटेड में पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.09.2014 को पारित निर्णय ।

घ. (1991) 3 एसएससी 283 – राजरथा नरानभाई मिल्स कं. लि. बनाम सेल्स टैक्स ऑफिसर, पेटलैंड।

ड. (2005) 8 एससीसी 190 - राजस्थान राज्य वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम आधिकारिक परिसमापक एवं अन्य (V)।

27. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और उनकी सहायता से रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

28. यहाँ राजस्थान मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 के प्रासंगिक प्रावधानों और कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रासंगिक प्रावधानों को उद्धृत करना उचित होगा:-

"**राजस्थान मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003"**

47**. इस अधिनियम के तहत दायित्व प्रथम प्रभार होगा.**- तत्समय प्रवृत्त किसी भी विधि में किसी भी प्रतिकूल बात होते हुए भी, इस अधिनियम के तहत किसी डीलर या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा देय कर की कोई भी राशि और कोई अन्य राशि, ऐसे डीलर या व्यक्ति की संपत्ति पर प्रथम प्रभार होगी।

"**कंपनी अधिनियम, 1956"**

529-क. अधिमान्य संदाय को अधिभावी बनाना। (1) किसी कंपनी के समापन में इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान या उस समय लागू किसी अन्य विधि में शामिल किसी बात के होते हुए भी-

(क) श्रमिकों का बकाया; और

(ख) धारा 529 की उप-धारा (1) के परंतुक के खंड (घ) के तहत ऐसे ऋणों की सीमा तक सुरक्षित लेनदारों को देय ऋण, ऐसे बकाया राशि के साथ, अन्य सभी ऋणों की तुलना में प्राथमिकता में भुगतान किए जाएंगे।

(2) उप-धारा (1) के खंड (क) और खंड (ख) के तहत देय ऋणों का पूरा भुगतान किया जाएगा, जब तक कि संपत्ति उन्हें पूरा करने के लिए अपर्याप्त न हो, जिस स्थिति में वे समान अनुपात में कम हो जाएंगे।

530. अधिमान्य भुगतान. परिसमापन में, धारा 529क के प्रावधानों के अध्यधीन, इन सभी ऋणों का प्राथमिकता में भुगतान किया जाएगा-

"(क) उप-धारा (8) के खंड (घ) में परिभाषित प्रासंगिक तारीख पर कंपनी से केंद्र या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को देय सभी राजस्व, कर, उपकर और दरें, जो देय हो गई हैं और उस तारीख से अगले बारह माह के भीतर संदेय हो जाएंगी; XXXXX XX"

29 इस न्यायालय ने, 1956 के अधिनियम की धारा 529क के प्रावधानों को ध्यान से पढ़ने पर पाया कि यह गैर-अस्थिर खंड से शुरू होता है और (क) श्रमिकों के बकाया

भुगतान के लिए अधिमान्य भुगतान प्रदान करता है; और (ख) सुरक्षित लेनदारों को उस सीमा तक देय ऋण, जिस सीमा तक ऐसे ऋण धारा 529 की उप-धारा (1) के परंतुक के खंड (ग) के अंतर्गत आते हैं, ऐसे बकाया के समकक्ष;"

30. धारा 529 की उपधारा (1) के खंड (घ) में यह प्रावधान है कि यदि सुरक्षित लेनदार का बकाया ऋण वसूल नहीं किया गया है या उसकी सुरक्षा में श्रमिकों के हिस्से की राशि कम है, तो उसे 1956 के अधिनियम की धारा 529क के प्रयोजनों के लिए श्रमिकों के बकाया के बराबर दर्जा दिया जाएगा।

31. इस न्यायालय ने पाया कि 1956 के अधिनियम की धारा 530 समापन कार्यवाही में अधिमान्य भुगतान का प्रावधान करती है और विभिन्न अधिमान्य भुगतान 1956 के अधिनियम की धारा 529क के प्रावधानों के अधीन किए जाने हैं तथा 1956 के अधिनियम की धारा 530 की उपधारा (1) के तहत, कंपनी से देय समस्त राजस्व, करों, उपकरों और करों का केंद्र या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा निर्धारित समय के भीतर भुगतान करना होगा।

32. उपरोक्त दो प्रासंगिक प्रावधानों अर्थात 1956 के अधिनियम की धारा 529क और 530 को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि किसी कंपनी को बंद करने में श्रमिकों के बकाया को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और 1956 के अधिनियम की धारा 529 की उप-धारा (1) के परंतुक के खंड (ग) के तहत ऋण की सीमा तक सुरक्षित ऋणदाता को देय अतिरिक्त ऋण को ऐसे बकाया के बराबर माना जाएगा।

33. इस न्यायालय ने आगे पाया कि 1956 के अधिनियम की धारा 530 तब लागू होती है जब श्रमिकों के बकाए और सुरक्षित लेनदार को देय ऋणों को प्राथमिकता दी जाती है और बाद में केंद्र/राज्य के पक्ष में अधिमान्य भुगतान किया जाता है। सरकार/स्थानीय प्राधिकारी उनके बकाया, करों आदि के संबंध में।

34. इस न्यायालय ने पाया कि 2003 का अधिनियम किसी डीलर या ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर पहला आरोप लगाने का प्रावधान करता है, जिसके विरुद्ध कोई भी कर या अन्य देय राशि देय है। 2003 के अधिनियम का उक्त प्रावधान भी एक गैर-अस्थिर खंड से शुरू होता है और इस तरह इसने राज्य सरकार को अधिकार प्रदान किया है कि कर की राशि या किसी अन्य देय राशि की वसूली की जानी आवश्यक है और ऐसे प्राधिकारी का ऐसे डीलर या व्यक्ति की संपत्ति पर पहला प्रभार होगा।

35. इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया मुख्य मुद्दा श्रमिकों और अन्य सुरक्षित लेनदारों के दावे की तुलना में राज्य के दावे/मुकुट के ऋण को दी जाने वाली अधिमान्य उपचार या प्राथमिकता के संबंध में है।

36. राज्य सरकार के ऊपर सुरक्षित ऋणदाता के ऋण की प्राथमिकता के मुद्दे, जिसे आमतौर पर क्राउन ऋण के रूप में जाना जाता है, की जांच विभिन्न उच्च न्यायालयों और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई है। यह न्यायालय विभिन्न उच्च न्यायालयों के संबंध में तथ्यों और कानून का वर्णन करना उचित समझता है कि उनके द्वारा प्राथमिकता वाले मुद्दे को कैसे निम्नानुसार निपटाया गया है:-

36-I. केरल राज्य में, केरल सामान्य बिक्री कर अधिनियम, 1963 के संबंध में एक समान

प्रावधान मौजूद था और 1956 के अधिनियम की धारा 529क के अनुसार सुरक्षित लेनदारों पर बिक्री कर विभाग की प्राथमिकता के मुद्दे की 18.12.2013 को निर्णीत **सहायक आयुक्त (मूल्यांकन), कोल्लम और अन्य बनाम ओएल, केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम और अन्य [2013 की कंपनी अपील संख्या 14 और 1998 की कंपनी याचिका संख्या 29]** के मामले में केरल उच्च न्यायालय द्वारा जांच की गई थी। वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक निर्णय का उद्धरण निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"11. जब संसद द्वारा सूची-I के तहत विशेष रूप से बनाए गए विधान के क्षेत्र के संदर्भ में कोई कानून बनाया जाता है और राज्य द्वारा सातवीं अनुसूची की सूची II में विधायी प्रविष्टि के संबंध में अनुच्छेद 246(3) के तहत अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए कोई कानून बनाया जाता है, तो प्रतिकूलता का प्रश्न उठ सकता है। न्यायालय को सौंपा गया पहला काम यह पता लगाना है कि क्या वहाँ कोई प्रतिकूलता है। न्यायालय को सार और सार के सिद्धांत का उपयोग करना चाहिए। यदि केवल आकस्मिक अतिक्रमण है और काफी हद तक कानून विधायिका के विशेष क्षेत्र में आता है, तो मात्र आकस्मिक अतिक्रमण को नजरअंदाज कर दिया जाएगा। लेकिन जब विधान असंगत होते हैं, तो संविधान ने संसदीय विधान को सर्वोच्चता प्रदान की है और संसदीय विधान ही सर्वोच्च होगा। जब कानून समवर्ती सूची में प्रविष्टियों के संदर्भ में बनाया जाता है, जहां संसद और राज्य विधानमंडल दोनों कानून बनाने के मामले में संप्रभु शक्तियां हैं, पुनः संविधान के अनुच्छेद 254 के मद्देनजर, जब तक कि यह कानून राज्य द्वारा न बनाया गया हो, जो राष्ट्रपति की सहमति के लिए रखा गया है और सहमति प्राप्त हो गई है, राज्य कानून को, यदि अन्यथा यह संसद द्वारा बनाए गए कानून के प्रतिकूल है, तो उसे यह धारणा बनानी होगी कि क्या यह संसदीय कानून राज्य द्वारा बनाए गए कानून से ऊपर होगा या उसके अधीन।

12. इस संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में, हमें धारा 26ख के प्रभाव की जांच करनी होगी, और यह कि क्या, अधिनियम की धारा 529क और 530 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर, राज्य यह तर्क दे सकता है कि धारा 529क के तहत पालन की जाने वाली प्राथमिकता प्रबल नहीं होगी।

धारा 529क इस प्रकार है:

"529क. "अधिमान्य भुगतान को अधिभावी बनाना - किसी कंपनी के परिसमापन में, इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान या उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित किसी भी बात के बावजूद-

(1) (क) श्रमिकों का बकाया; और

(ख) धारा 529 की उपधारा (1) के परंतुक के खंड (घ) के तहत ऐसे ऋणों की श्रेणी तक सुरक्षित लेनदारों को देय ऋण का भुगतान, ऐसे बकाया राशि के साथ, अन्य सभी ऋणों की तुलना में प्राथमिकता में किया जाएगा।

(2) उप-धारा (1) के खंड (क) और खंड (ख) के तहत देय ऋणों का पूरा भुगतान किया जाएगा, जब तक कि संपत्ति उन्हें पूरा करने के लिए अपर्याप्त न हो, जिस स्थिति में वे समान अनुपात में कम हो जाएंगे।

धारा 529क सुरक्षित लेनदारों और श्रमिकों को देय ऋणों की अधिभावी प्राथमिकता के बारे में बात करती है। धारा 530 बिना किसी अनिश्चित शर्तों के करों के भुगतान को अन्य बातों के साथ-साथ केवल धारा 529क में सन्निहित प्राथमिकता के अधीन बनाती है। यदि, जैसा कि करों के लिए विद्वान विशेष सरकारी अधिवक्ता ने तर्क दिया है, उक्त वैधानिक योजना के बावजूद, बिक्री कर अधिनियम की धारा 26ख के तहत बनाए गए पहले शुल्क

के आधार पर केरल राज्य को देय करों को प्राथमिकता दी जानी है, तो हमें अधिनियम की धारा 529क और 530 को नजरअंदाज करना होगा। हमारा विचार है कि हालांकि राज्य बिक्री कर अधिनियम के तहत देय राशि पर पहला शुल्क देने के लिए धारा 26ख को अधिनियमित करना राज्य विधायिका के लिए वास्तव में खुला था, लेकिन यह उस स्थिति में प्रभावी नहीं हो सकता है, जब यह धारा 529क के जनादेश के साथ टकराव में आता है। यह धारा 529क है जो प्रभावी होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, ऐसा नहीं है कि धारा 26ख किसी भी तरह से व्यर्थ है या उसका कोई उपयोग नहीं है। वास्तव में इसमें अन्यथा पूरी शक्ति होगी। लेकिन इसे धारा 530 के साथ पठित धारा 529क और धारा 26ख के अधिदेश के विरुद्ध बनाए रखना, वास्तव में अप्रभाविता और महत्वहीनता में बदल जाना चाहिए। वे एक साथ बनाए नहीं रखे जा सकते हैं। यदि उन्हें एक साथ बनाए रखे जाने की अनुमति दी जाती है, तो अनिवार्य रूप से असहनीय संघर्ष होता है और उस संघर्ष को केवल संसदीय कानून के पक्ष में ही हल किया जा सकता है। परिणामी स्थिति यह है कि, जैसा कि संसद ने घोषित किया है कि किसी कंपनी के बंद होने की स्थिति में, उसकी परिसंपत्तियों की आय को सबसे पहले सुरक्षित लेनदारों और श्रमिकों को सुनिश्चित किया जाना चाहिए और इसे समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। उनके बीच और फिर, यदि कोई आय बच जाती है, तो इसे राज्य सहित अन्य लोगों के बीच वितरित किया जाना है, जो इस मामले में बिक्री कर कानून के तहत किए गए आकलन के बाद असंतुष्ट मांगों वाले लेनदार हो सकते हैं। धारा 26ख को प्रभावी करने से संसदीय कानून विफल हो जाएगा।

13. इस संबंध में हमें सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (सुप्रा.) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को देखना चाहिए। यह सच है कि सेंट्रल बैंक के मामले में, उच्चतम न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि क्या बिक्री कर अधिनियम की धारा 26ख बैंक और वित्तीय संस्थान अधिनियम 1993 के कारण ऋण के प्रावधानों पर लागू होगी। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने माना कि डीआरटी अधिनियम में अधिनियम की धारा 529क के समान कोई प्रावधान नहीं है। अनुच्छेद 129 में, यह माना जाता है कि यदि संसद ऋण वसूली न्यायाधिकरण अधिनियम के तहत वसूली जाने वाली राशि को प्राथमिकता देने का इरादा रखती है, तो उसने अन्य प्रावधानों के बीच धारा 529क की तर्ज पर प्रावधान बनाए होंगे। यह स्पष्ट संकेत का मामला है कि जब मामला धारा 529क और धारा 26ख के तहत दावे के बीच तय किया जाना है, तो यह धारा 529क के तहत दावा है जो अधिनियम की धारा 530 के प्रावधानों के मद्देनजर मान्य होगा क्योंकि बिना किन्हीं अनिश्चित शर्तों के करों के भुगतान के लिए राज्य का दावा धारा 529क के अधीन है। हमारे इस दृष्टिकोण को केरल राज्य बनाम पोयशा इंडस्ट्रियल कर्नल लिमिटेड (2010 158 कंप. केस 582) के आधिकारिक परिसमापक मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय से भी समर्थन मिलता है।

केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय को उच्चतम न्यायालय ने बरकरार रखा है और एसएलपी (सिविल) [सीसी संख्या 6368/2014] को 25.04.2014 के आदेश के तहत अपास्त कर दिया गया है।

36-II. गुजरात उच्च न्यायालय ने **गुजरात राज्य बनाम केनगोल्ड (इंडिया) लिमिटेड और अन्य के ओएल [2009] 149 कॉम्प केस 625 (गुजरात)** में रिपोर्ट किया गया के मामले में 1956 के अधिनियम के तहत सुरक्षित और असुरक्षित लेनदारों सहित सभी लेनदारों पर बिक्री कर बकाया की प्राथमिकता के मुद्दे पर विचार किया। निर्णय का प्रासंगिक भाग - पैरा 28, यहाँ पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"28. क्षेत्रीय निदेशक, ई.एस.आई. कॉर्पोरेशन बनाम प्रसाद मिल्स लिमिटेड का आधिकारिक

परिसमापक, 2005 (3)] 46 (3) जीएलआर 2019 के मामले में, इस न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि धारा 529क वर्ष 1985 में आरम्भ की गई है यह एक गैर-अस्थिर खंड से शुरू होती है। यह स्पष्ट रूप से उपबंध करती है कि "अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून के किसी अन्य प्रावधान में किसी भी बात के होते हुए। धारा 529क का उचित अवलोकन यह स्पष्ट कर देगा कि धारा 529क के प्रावधान धारा 530 में निहित प्रावधानों पर अभिभावी होंगे इतना ही नहीं, धारा 529क में निहित प्रावधान ई.एस.आई. अधिनियम में निहित प्रावधानों पर अभिभावी होंगे, क्योंकि ई.एस.आई. अधिनियम 1948 का अधिनियम है, जबकि कंपनी अधिनियम में संशोधन वर्ष 1985 में किया गया है और ऐसा पूरी जानकारी के साथ किया गया है कि यह धारा में निहित प्रावधानों को अधिभावी किया जाना था।

यदि ई.एस.आई. अधिनियम की धारा 94. और कंपनी अधिनियम की धारा 530 को धारा 529क के अधीन कर दिया जाता है, तो धारा 529क दूसरों के उन अधिकारों पर कब्ज़ा कर लेगी जिनके अन्य लोग या तो विशेष कानूनों के तहत या कंपनी अधिनियम की धारा 530 के तहत पात्र हैं। कंपनी अधिनियम की धारा 529क के संयुक्त/साथ पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि समापन के मामले में, श्रमिकों की बकाया राशि और सुरक्षित लेनदारों के कारण ऐसे ऋण प्रावधान के खंड (ख) के अंतर्गत आते हैं और धारा 529क की उप-धारा (1) में ऐसे बकाया के साथ, अन्य सभी ऋणों की तुलना में प्राथमिकता में भुगतान किया जाएगा। यदि इस तरह के बकाया और ऋण का पूरा भुगतान कर दिया गया है, और उसके बाद भी, इसके वितरण के लिए आधिकारिक परिसमापक के पास कुछ पैसा बचा हुआ है, तो ऐसे पैसे को कंपनी अधिनियम की धारा 530 के तहत वितरित किया जा सकता है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, तो राज्य सरकार या केंद्र सरकार या स्थानीय प्राधिकरण विद्वान कंपनी न्यायाधीश के समक्ष अपना दावा दायर कर सकते हैं और उस समय, वे अपने अधिमान्य अधिकार को ध्यान में रखते हुए, या तो स्थानीय अधिनियम के तहत रह सकते हैं या उन्हें कंपनी अधिनियम की धारा 530 के तहत भुगतान किया जाएगा। न्यायालय ने आगे कहा कि धारा 529क की अनुपस्थिति में, उत्तर निश्चित रूप से ई.एस.आई. निगम के पक्ष में हो सकते हैं। चूंकि, धारा 529क की शुरूआत और कंपनी अधिनियम की धारा 530 में संशोधन के बाद, विधिक स्थिति बदल गई है। जब आधिकारिक परिसमापक सुरक्षित लेनदारों के पास गिरवी रखी गई प्रतिभूतियों को प्राप्त करता है या अपने पास रखता है, तो आधिकारिक परिसमापक कंपनी अधिनियम की धारा 529क और धारा 530 के प्रावधानों को पूरा करने के लिए बाध्य होगा। ऐसे में इक्विटी का प्रश्न नहीं उठेगा क्योंकि ऐसे मामले में जहां प्रतिभूतियां/संपत्तियां/परिसंपत्तियां कंपनी अधिनियम की धारा 529क के तहत वर्णित लेनदारों के दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, अधिनियम की धारा 530 के तहत भुगतान का प्रश्न नहीं उठेगा और उत्पन्न नहीं होता है। कंपनी अधिनियम की धारा 530 तभी लागू होगी जब धारा 529क के तहत देनदारी खत्म हो जाएगी और कुछ पैसा अभी भी बचा हुआ है।'

36-III. गुजरात उच्च न्यायालय ने बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2020) 4 जीएलआर 2498, में रिपोर्ट किया गया, के मामले में एसएआरएफएईएसआई अधिनियम, 2002 पर गुजरात मूल्य वर्धित कर, 2003 की प्राथमिकता के मुद्दे पर विचार किया। वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक निर्णय का उद्धरण यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"11. पक्षों की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों को पढ़ने के बाद, एकमात्र प्रश्न जो मेरे विचार में आता है, वह यह है कि क्या केंद्रीय कानून

गुजरात मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 (इसके बाद, 'वैट अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 48 पर लागू होगा। इसे दूसरे शब्दों में कहें, तो क्या सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के मद्देनजर सुरक्षित ऋणदाता होने के नाते अपना बकाया वसूलना बैंक की पहली प्राथमिकता होगी या वैट अधिनियम की धारा 48 के मद्देनजर राज्य की पहली प्राथमिकता होगी।

12 से 16. XXXXX

17. वैट अधिनियम की धारा 48 को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि यह 'तत्समय लागू किसी भी कानून में किसी भी विपरीत बात के बावजूद' एक गैर-अस्थिर खंड से शुरू होता है।

18. आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख भी एक गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है 'तत्समय लागू किसी भी अन्य कानून में कुछ भी शामिल होने के बावजूद'।

19. सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड· भी एक गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है 'तत्समय लागू किसी भी अन्य कानून में कुछ भी शामिल होने के बावजूद'।

20. XXXXXX

21. एक गैर-विषयक खंड को आम तौर पर किसी अनुभाग में इस उद्देश्य से जोड़ा जाता है कि विवाद की स्थिति में, अनुभाग के अधिनियमित भाग को, गैर-विषयक खंड में उल्लिखित उसी या अन्य अधिनियम के प्रावधान पर एक अधिभावी प्रभाव दिया जा सके। यह इसके समान है कि गैर-विषयक खंड में उल्लिखित प्रावधानों या अधिनियम के बावजूद, इसके बाद के प्रावधान का अपना पूर्ण संचालन होगा या गैर-विषयक खंड या वह प्रावधान जिसमें गैर-विषयक खंड होता है, में शामिल प्रावधान अधिनियम के संचालन में बाधा नहीं बनेंगे। [न्यायाधीश जी.पी.सिंह द्वारा लिखित 'वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत', 9वां संस्करण, अध्याय 5, सारांश IV पृष्ठ 318 और 319 पर देखें]

22. जब दो या दो से अधिक कानून या प्रावधान एक ही क्षेत्र में संचालित होते हैं और प्रत्येक में एक गैर-अस्थिर खंड होता है, जिसमें कहा गया है कि इसका प्रावधान किसी अन्य प्रावधान या कानून से आगे निकल जाएगा, तो व्याख्या की उत्तेजक और जटिल समस्याएं उत्पन्न होती हैं। व्याख्या की ऐसी समस्याओं को हल करने में, दो प्रावधानों में से प्रत्येक के उद्देश्य और उद्देश्य को संदर्भित करने के अलावा कोई भी स्थापित सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता है, जिसमें एक गैर-अस्थिर खंड शामिल है। एक ही अधिनियम में दो प्रावधानों में से प्रत्येक में एक गैर-अस्थिर खंड होता है, जिसके लिए एक ही अधिनियम में दो प्रतीत होने वाले विरोधाभासी प्रावधानों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या की आवश्यकता होती है। इस कठिन अभ्यास में, दो प्रावधानों के उद्देश्य और उद्देश्य को प्रभावी बनाने और प्रत्येक में प्रयुक्त भाषा पर उचित विचार शामिल है। [देखने के लिए श्री स्वर्ण सिंह एवं अन्य में पैरा 20 में प्रासंगिक चर्चा। वी. श्री कस्तूरी लाल; (1977) 1 एससीसी 750]

23. आम तौर पर वैधानिक प्रावधान में विधायिका द्वारा 'इस अधिनियम में निहित किसी भी विपरीत बात के बावजूद' जैसे वाक्यांश का उपयोग यह कहने के बराबर है कि अधिनियम इस उपाय में कोई बाधा नहीं होगा [कानून शब्दावली के शब्दों को देखें 'इसमें कुछ भी होने के बावजूद' यह अधिनियम इसके विपरीत है']। ऐसी अभिव्यक्ति का उपयोग यह कहने का एक और तरीका है कि जिस प्रावधान में गैर-अस्थिर खंड होता है वह आमतौर पर अधिनियम के अन्य प्रावधानों पर प्रबल होगा। इस प्रकार, गैर-अस्थिर खंडों को हमेशा निरस्त करने वाले खंडों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और न ही उन खंडों के रूप में जो कानून के किसी

भी अन्य प्रावधान को स्पष्ट रूप से या पूरी तरह से हटा देते हैं, बल्कि केवल उन खंडों के रूप में माने जाते हैं जो किसी अन्य कानून के प्रावधानों से उत्पन्न होने वाली सभी बाधाओं को दूर करते हैं। सिद्धांत अधिनियमित प्रावधान के संचालन के तरीके में जिसमें गैर-विषयक खंड जुड़ा हुआ है। [बिपथुम्मा और अन्य देखें। वी. मरियम बीबी; 1966(1) मैसूर लॉ जर्नल पृष्ठ 162, पृष्ठ 165 पर]

24. विवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसे सुलझाने के लिए मुझे बुलाया गया है, मैं उच्चतम न्यायालय के दो निर्णयों पर गौर करना चाहूंगा; एक, कुमाऊं मोटर ओनर्स यूनियन लिमिटेड के मामले में और दूसरा, बनाम उ.प्र. राज्य, एआईआर 1966 एससी 785 में प्रकाशित, और दूसरा, सॉलिडेयर इंडिया लिमिटेड बनाम फेयरग्रोथ फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड और अन्य, (2001)3 एससीसी 71 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में। हालाँकि ऊपर उल्लिखित दो निर्णयों का अनुपात सीधे मामले पर लागू नहीं हो सकता है, फिर भी कानून के कुछ सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, मैं वैट अधिनियम की धारा 48, आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख और सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के संबंध में विवाद को हल करने के प्रयोजनार्थ इसका पालन करना और इसे लागू करना चाहूंगा।

25 और 26. XXXXX

27. कुमाऊँ मोटर ओनर्स यूनियन लिमिटेड (सुप्रा.) के मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में यह स्पष्ट सिद्धांत यह हैं कि, यदि दो अधिनियमों के प्रावधानों के बीच कोई विरोधाभास है और यदि कुछ भी प्रतिकूल नहीं है, तो प्रावधान पश्चातवर्ती अधिनियम प्रबल होगा। दूसरा समझने योग्य सिद्धांत यह है कि, संघर्ष को हल करते समय, न्यायालय को दो क़ानूनों के पीछे के उद्देश्य पर गौर करना चाहिए। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, बाद में विधायिका को एक विशेष प्रावधान लागू करने की क्या आवश्यकता पड़ी, जो अन्य अधिनियमों के प्रावधानों के साथ टकराव में हो सकता है। तीसरा समझने योग्य सिद्धांत यह है कि न्यायालय को प्रावधानों की भाषा पर गौर करना चाहिए। यदि किसी विशेष प्रावधान की भाषा अधिक सशक्त पाई जाती है, तो यह विधायिका की मंशा का संकेत होगा कि अधिनियम अन्य क़ानूनों पर प्रबल होगा।

28. XXXXX

29. सॉलिडेयर इंडिया लिमिटेड (सुप्रा.) के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से समझ में आने वाले कानून के सिद्धांत यह हैं कि, यदि दो विशेष अधिनियमों के बीच कोई टकराव है, पश्चातवर्ती अधिनियम प्रबल होना चाहिए। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, जब दो विशेष क़ानून होते हैं जिनमें गैर-अस्थिर खंड होते हैं, तो पश्चातवर्ती क़ानून प्रभावी होना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि बाद के क़ानून के अधिनियमन के समय, विधायिका को पहले के कानून और उसके गैर-अस्थिर खंड के बारे में पता होना कहा जा सकता है। यदि विधायिका अभी भी बाद के अधिनियम को एक गैर-अस्थिर खंड प्रदान करती है, तो इसका अर्थ यह है कि विधायिका चाहती थी कि वह अधिनियम लागू हो।

30. मैं स्पष्ट कर दूं कि मौजूदा मामले में संसद द्वारा अधिनियमित दो विशेष क़ानूनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। टकराव राज्य अधिनियम और केंद्रीय अधिनियम के साथ है। मैं सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के वास्तविक अर्थ और प्रभाव को समझने की कोशिश कर रहा हूं जो बाद में लागू हुई और साथ ही आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख के प्रभाव को भी समझने की कोशिश कर रहा हूं जो बाद में लागू हुई।

31 से 33. XXXXX

34. मैं एक बात को लेकर आश्वस्त हूं कि दोनों कानूनों में कोई विरोध नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि संसद का इरादा संपत्ति पर पहला शुल्क प्रदान करने वाले राज्य अधिनियम को रद्द करना है। कानून क्रमशः केंद्र सरकार और राज्य द्वारा अनुसूची की प्रविष्टि I और II के तहत बनाए गए हैं, न कि समवर्ती सूची के तहत। संसद द्वारा किया गया संशोधन पहले शुल्क के बारे में बात किए बिना राज्य के बकाए की तुलना में सुरक्षित लेनदारों को प्राथमिकता देना है। सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (सुप्रा.) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस पहलू पर विधिवत विचार किया गया था। संशोधित प्रावधान, अर्थात सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड. और आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख, अलग-अलग होते जैसा कि सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (सुप्रा.) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने संकेत दिया था।

35 से 44 XXXXX

45. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का सिद्धांत यह है कि अन्य लेनदारों पर ऋण की वसूली का राज्य का अधिमान्य अधिकार सामान्य या असुरक्षित लेनदारों तक ही सीमित है। उच्चतम न्यायालय ने यह विचार किया कि इंग्लैंड का सामान्य कानून या समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांत (जैसा कि भारत पर लागू होता है) क्राउन को माल के गिरवीदार पर अपने ऋण की वसूली के लिए सुरक्षित ऋणदाता. अधिमान्य अधिकार नहीं देता है। यह सच है कि अंततः बैंक को कोई राहत नहीं दी गई, लेकिन मामले के विशिष्ट तथ्यों में यह राहत नहीं दी गई। अन्यथा, जैसा कि समझाया गया है, कानून का सिद्धांत बहुत स्पष्ट है। बिना किसी अनिश्चित शब्दों के, उच्चतम न्यायालय ने माना कि अपीलार्थी, अर्थात बैंक, यह प्रस्तुत करने में सही था कि जिस तारीख को कर्नाटक राज्य ने बैंक के पास गिरवी रखी फर्म के भागीदारों की संपत्ति को कुर्क करने और बेचने के लिए आगे बढ़ाया, वह बिक्री से प्राप्त आय को फर्म द्वारा देय बिक्री-कर बकाया में विनियोजित नहीं किया जा सका, जिससे बैंक की सुरक्षा नष्ट हो गई। ऐसा दृष्टिकोण अपनाने में, उच्चतम न्यायालय ने सीएसटी बनाम राधाकिशन, (1979) 43 एसटीसी 4: एआईआर 1979 एससी 1588 के मामले में अपने पहले के निर्णय पर भरोसा किया।

36-IV **बैंक ऑफ इंडिया बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य [2014 का आर/विशेष सिविल आवेदन संख्या 13863],** 21.01.2020 को निर्णय लिया गया, के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा यह देखने के लिए फिर से मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 की धारा 48 के प्रावधानों की तुलना में बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 (संक्षेप में 'आरडीबी अधिनियम') में निहित प्रावधानों पर विचार किया गया कि क्या आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख सुरक्षित ऋणदाता को सरकारी ऋणों पर अपना बकाया वसूलने के लिए प्राथमिकता देती है। गुजरात उच्च न्यायालय ने माना कि सुरक्षित ऋणदाता को राज्य सरकार के बकाए पर प्राथमिकता मिलेगी।

36-V हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने **पंजाब नेशनल बैंक अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (4) आरसीआर (सिविल) 837** में रिपोर्ट किया गया, के मामले में हिमाचल प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 के अनुसार, हिमाचल प्रदेश मूल्य वर्धित कर के संबंध में राज्य सरकार के दावे पर सुरक्षित ऋणदाता की प्राथमिकता के मुद्दे पर भी विचार किया। वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक निर्णय का उद्धरण निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"25. इस स्तर पर, केरल मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 (केवीएटी अधिनियम) की धारा 38 के प्रावधानों को उद्धृत करना आवश्यक है, जो इस प्रकार है:

"कर संपत्ति पर पहला शुल्क देय होगा - किसी भी समय लागू होने वाले किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी विपरीत बात के होते हुए, कर, जुर्माना, ब्याज और किसी भी अन्य राशि की कोई भी राशि, यदि कोई हो, जो डीलर द्वारा देय हो या इस अधिनियम के तहत किसी अन्य व्यक्ति पर, डीलर या ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर पहला आरोप लगाया जाएगा।

केवीएटी अधिनियम की धारा 38 और एचपी वैट अधिनियम की धारा 26 के प्रावधानों का अवलोकन दर्शाता है कि ये प्रावधान लगभग समान हैं। यह न्यायालय इससे सहमत है केरल के माननीय उच्च न्यायालय का तर्क है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 26ड. के साथ पठित आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख के लागू होने के बाद, पहला प्रभार बैंकों/वित्तीय संस्थानों के पक्ष में प्राथमिकता के आधार पर बनाया जाता है, राजस्व के पक्ष में किसी भी स्थानीय वैधानिक "प्रथम शुल्क" के बावजूद, जिससे कि वे अपने ऋणों की वसूली कर सकें और उन्हें समायोजित करें।

26 से 28. XXXXXX

29. गुजरात मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 की धारा 48 इस प्रकार है:

"48. संपत्ति पर कर का पहला शुल्क:-- तत्समय लागू किसी भी कानून में किसी भी प्रतिकूल बात के होते हुए, किसी डीलर या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा देय कोई राशि या कर, ब्याज या जुर्माना का खाता जिसके लिए वह उत्तरदायी है सरकार को भुगतान ऐसे डीलर, या जैसा भी मामला हो, ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर पहला परिवर्तन होगा।

यह प्रावधान हिमाचल प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 की धारा 26 के प्रावधानों के समान है।

माननीय गुजरात उच्च न्यायालय ने बैंक ऑफ बड़ौदा में अपने सहायक महाप्रबंधक बनाम गुजरात राज्य और 3 अन्य, आर/विशेष नागरिक आवेदन संख्या 12995, 2018, 16.09.2019 को निर्णय किया गय, के माध्यम से गुजरात वैट अधिनियम की धारा 48 के प्रावधानों की तुलना में सरफेसी अधिनियम की धारा 26 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए निर्णय लिया और यह कहा कि आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख में माना गया है कि गुजरात वैट अधिनियम, 2003 की धारा 48 के कारण सुरक्षित संपत्तियों पर पहली प्राथमिकता बैंक की होगी, न कि राज्य सरकार की।

30. माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम. बिक्री कर आयुक्त, म.प्र., इंदौर और अन्य, (2018) 55 जीएसटीआर 210 (म.प्र.) को मप्र वैट अधिनियम, 2002 की धारा 33 की तुलना में आरडीबी अधिनियम की धारा 31-बी की व्याख्या करते समय एक समान मुद्दे पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिसमें एक गैर-प्रतिरोधी खंड शामिल था और सरकार के पक्ष में एक डीलर की संपत्ति पर पहला आरोप लगाया गया था। यह माना गया कि राज्य सरकार को संपत्ति की नीलामी करने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि आरडीबी अधिनियम की धारा 31ख में संशोधन के आलोक में बैंक को इस मामले में प्राथमिकता मिल रही है।

31. भारतीय स्टेट बैंक बनाम महाराष्ट्र राज्य, रिट याचिका (एसटी.) संख्या 92816/2020, ने 17 दिसंबर, 2020 को निर्णय लिया, में माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें, उक्त न्यायालय ने माना है कि यदि कोई केंद्रीय क़ानून एक सुरक्षित लेनदार के पक्ष में आरोप की प्राथमिकता बनाता है, तो यह राज्य के मूल्य वर्धित कर के तहत देय कर के लिए राज्य के पक्ष में शुल्क से ऊपर होगा।

32. इस प्रकार, माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय ने भी माना है कि आरडीबी अधिनियम, 1993 की धारा 31ख के प्रावधानों के आलोक में, पहला शुल्क बैंकों/वित्तीय संस्थानों का होगा, न कि राजस्व का। हालाँकि, इस स्तर पर यह बताना महत्वपूर्ण है कि महाराष्ट्र मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2002 की धारा 37 की तुलना में एचपी वैट अधिनियम की धारा 26 के वैधानिक प्रावधानों में थोड़ा अंतर है, जिसमें स्पष्ट रूप से धारा भी शामिल है कि राज्य के डीलर की संपत्ति पर पहला शुल्क उस समय लागू किसी भी केंद्रीय अधिनियम में प्रथम शुल्क के निर्माण के संबंध में किसी भी प्रावधान के अधीन होगा।

33. जैसा भी हो, माननीय बंबई उच्च न्यायालय के निर्णय को पढ़ने से पता चलता है कि इसने अपने संबंधित वैट अधिनियमों के संबंध में अन्य सभी माननीय न्यायालयों की घोषणाओं को ध्यान में रखा है, जिसमें एक गैर शामिल था एच.पी. वैट अधिनियम, 2005 बनाम सरफेसी अधिनियम और आरडीबी अधिनियम की धारा 26 में निहित संशोधन के समान राज्य के पक्ष में ऑबस्टेंट क्लॉज शामिल थी।

34. इस प्रकार, जो ऊपर चर्चा की गई है, उसमें अब कोई अस्पष्टता नहीं है कि सरफेसी अधिनियम 2002 की धारा 26Eऔर ऋण वसूली और दिवालियापन अधिनियम, 1993 की धारा 31ख के प्रावधानों के मद्देनजर, एक सुरक्षित लेनदार को राजस्व द्वारा दावा किये गये अधिकार पर प्राथमिकता दी जाती है ।"

37. विद्वान महाधिवक्ता की दलील है कि 2003 के अधिनियम की धारा 47 के अधिभावी प्रभाव के आधार पर राज्य के पास अन्य लेनदारों के विरुद्ध क्राउन के ऋण के रूप में पहला प्रभार है, जो गैर-विषयक खंड से शुरू होता है और राज्य के पास 2003 का अधिनियम बनाने की पूर्ण विधायी क्षमता है और इस प्रकार, ओएल ने राज्य के बकाए को प्राथमिकता देने से इनकार कर दिया है, इस न्यायालय ने पाया कि 1956 का अधिनियम संसद द्वारा सूची-I (संघ सूची) की भारत के संविधान से जुड़ी 7वीं अनुसूची प्रविष्टि 43 के आधार पर अधिनियमित किया गया है।

38. इस न्यायालय ने पाया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 246 कक गैर-अस्थिर खंड के साथ खुलता है और संसद को 7वीं अनुसूची की सूची-I, जिसे संघ सूची के रूप में जाना जाता है, में सूचीबद्ध मामलों के संबंध में कानून बनाने की विशेष शक्ति दी गई है।

39. यह न्यायालय आगे पाता है कि राज्य विधायिका 7वीं अनुसूची की सूची-II में सूचीबद्ध मामलों के संबंध में भी कानून बना सकती है, जो अनुच्छेद 246 के खंड (1) और (2) के अधीन है। अनुच्छेद 246 के तहत गैर-अस्थिर खंड (1) सूची-1 में शामिल मामले के संबंध में, 7वीं अनुसूची की सूची-II में शामिल मामला संसद द्वारा बनाए गए कानून और राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून के ओवरलैप होने की स्थिति में संघ विधायिका द्वारा बनाए गए कानून की प्रबलता या सर्वोच्चता को इंगित करता है।

40. यह न्यायालय पाता है कि संसद और राज्य विधानमंडल दोनों अपने-अपने निर्धारित क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं और यह न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है कि वह संसद और राज्य विधानमंडल दोनों द्वारा बनाए गए कानूनों की इस तरह से व्याख्या करे ताकि किसी भी टकराव से बचा जा सके।

41. यह न्यायालय पाता है कि यदि संघर्ष अपरिहार्य है और दो अधिनियम असंगत हैं, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 के खंड (1) में गैर-अस्थिर खंड के बल के कारण, संसदीय कानून विशेष शक्ति के बावजूद प्रबल होगा राज्य विधानमंडल को राज्य सूची में उल्लिखित मामले के संबंध में कानून बनाने का अधिकार है।

42. यह न्यायालय आगे पाता है कि 1956 के अधिनियम की धारा 529क सुरक्षित

लेनदारों और श्रमिकों को देय ऋणों को प्राथमिकता प्रदान करती है और 1956 के अधिनियम की धारा 530 करों के भुगतान को धारा 529क में सन्निहित प्राथमिकता के अधीन बनाती है।

43. इस न्यायालय ने पाया कि राज्य के पास अधिनियम की धारा 47 के तहत पहले बिक्री कर अधिनियम, 2003 और अब वैट के तहत राज्य को देय राशि की वसूली के लिए पहला प्रभार बनाने की पूरी क्षमता है। हालांकि, इसे प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है, जब यह धारा 529क के जनादेश के साथ टकराव में आता है, तो 1956 के अधिनियम की धारा 529क और 530 प्रबल होगा।

44. यह न्यायालय किसी भी तरह से यह नहीं पाता है कि राज्य के पास 2003 के अधिनियम में धारा 47 सम्मिलित करने की कोई क्षमता नहीं है और वही कानून किसी भी तरह से बेकार या अनावश्यक नहीं है, हालांकि, यदि संसद द्वारा अधिनियमित केंद्रीय अधिनियम प्रदान करता है किसी कंपनी की परिसंपत्तियों की आय को सुरक्षित लेनदारों और श्रमिकों को दिया जाना है, फिर उसे 1956 के अधिनियम की धारा 529क में दी गई प्राथमिकता के अनुसार, दूसरों के बीच समान रूप से वितरित किया जाना है।

45. विद्वान महाधिवक्ता की दलील है कि संसद ने 1956 के अधिनियम में धारा 529क को शामिल करके केवल श्रमिकों के बकाए को तरजीह दी है, लेकिन राज्य सरकार जैसे अन्य लेनदारों को उनकी देय राशि का दावा करने से वंचित नहीं किया जा सकता है, इस न्यायालय ने पाया कि यदि संसद ने 1956 के अधिनियम में संशोधन किया है और केवल श्रमिकों के दावे को प्राथमिकता दी गई है, किसी अन्य लेनदार को उसका बकाया पाने से वंचित करने के बारे में न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

46. यह न्यायालय पाता है कि केंद्र या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को कंपनी के कारण होने वाले राजस्व, कर, उपकर आदि का अधिमान्य भुगतान भी 1956 के अधिनियम धारा 529क के प्रावधानों के अधीन होगा। यह न्यायालय, यदि विद्वान महाधिवक्ता की दलील स्वीकार करता है एक तरह से, 1956 के अधिनियम की धारा 530 को फिर से लिखना होगा और इस न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया जा सकता है। यदि विधायिका-संसद ने अधिमान्य भुगतान के संबंध में कोई बदलाव किया है और केवल श्रमिकों के बकाए को प्राथमिकता दी गई है, तो राज्य सहित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई शिकायत उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि विधायिका ने अपने विवेक से सोचा है कि श्रमिकों और अन्य सुरक्षित लेनदारों के बकाए की रक्षा करना आवश्यक है, तो कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि विधायिका ने राज्यों के लिए अपने बकाए का दावा करने में कोई भेदभाव किया है।

47. विद्वान महाधिवक्ता की दलील कि राज्य सरकार ने 2003 का अधिनियम बनाकर एक विशेष कानून बनाया है और कंपनी अधिनियम, 1956 एक सामान्य कानून है और इस प्रकार, राज्य का विशेष कानून सामान्य कानून पर हावी होगा, इस न्यायालय द्वारा यह कहना पर्याप्त है कि यदि संसद ने कंपनी अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया है और वही कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अनुसार सभी कंपनियों को नियंत्रित करती है, तो संघ विधानमंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम को राज्य सरकार द्वारा अधिनियमित मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 की तुलना में एक सामान्य कानून के रूप में नहीं माना जा सकता है।

48. विद्वान महाधिवक्ता की यह दलील कि कंपनी का परिसमापन बंद हो गया है और इसकी संपत्तियां बेच दी गई हैं और इस प्रकार, राज्य के पास ओएल के माध्यम से अपना

बकाया वसूलने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है, इस न्यायालय ने पाया कि लेनदारों के दावे/बकाया का निपटान ओएल द्वारा 1956 के अधिनियम के तहत निर्धारित तरीके और प्राथमिकता के अनुसार किया जाना आवश्यक है। राज्य के बकाए को किसी भी तरह से श्रमिकों और अन्य सुरक्षित लेनदारों के बकाए/दावों पर प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

49. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा महेंद्र लाल जैनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (सुप्रा.) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया गया है। इस न्यायालय ने पाया कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुद्दा **उ.प्र. भूमि कार्यकाल (हस्तांतरण का विनियमन) अधिनियम, 1952** की संवैधानिक वैधता के संबंध में था।

50. विद्वान महाधिवक्ता ने अधिनियम 1956 की धारा 529क की उपधारा (1) के खंड (ख) में निहित प्रावधानों पर विचार करने के लिए "हद तक" शब्दों के उद्देश्य से इस निर्णय पर भरोसा किया है।

51. इस न्यायालय ने पाया कि 1956 के अधिनियम की धारा 529 और 530 की व्याख्या करते समय इस न्यायालय द्वारा "हद तक" इस्तेमाल किए गए शब्दों पर पहले ही विचार किया जा चुका है, इस प्रकार, यह निर्णय विद्वान महाधिवक्ता के लिए कोई सहायता नहीं है।

52. **कर्मचारी भविष्य निधि आयुक्त बनाम एस्के फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड के ओएल (सुप्रा.)** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विद्वान महाधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है, इस न्यायालय ने पाया कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुद्दा कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 की धारा 11 के तहत नियोक्ता द्वारा देय बकाया राशि को प्राथमिकता देने के संबंध में था और 1956 के अधिनियम की धारा 529क के अनुसार, श्रमिकों की बकाया राशि और सुरक्षित लेनदारों को देय ऋण का भुगतान अन्य सभी ऋणों की तुलना में प्राथमिकता में किया जाना आवश्यक है।

53. कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 की धारा 11 और 1956 के अधिनियम की धारा 529, 529क और 530 की व्याख्या पर उच्चतम न्यायालय ने पाया कि कंपनी अधिनियम, 1985 में संशोधन केवल दायरे का विस्तार करने के लिए था। कामगारों के बकाए को सुरक्षित लेनदारों के बकाया कर्ज के बराबर रखा जाए और इस संशोधन की व्याख्या करने का कोई कारण नहीं था कि नियोक्ता द्वारा देय भविष्य निधि के बकाए पर सुरक्षित लेनदारों के कर्ज को प्राथमिकता दी जाए। इस न्यायालय ने पाया कि उक्त निर्णय विद्वान महाधिवक्ता के लिए बहुत कम सहायता वाला है।

54. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा **जयंत वर्मा और अन्यबनाम यूओआई और अन्य (सुप्रा.),** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया गया है। इस न्यायालय ने पाया कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रश्न भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की सूची-1 की प्रविष्टि 45 और सूची-2 की प्रविष्टि 30 के संबंध में था और इन्हें कैसे सुसंगत बनाया जाना चाहिए, इसके अनुसार भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 और 'संघीय सर्वोच्चता सिद्धांत' का ध्यान कैसे रखा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने पाया कि उक्त निर्णय विद्वान महाधिवक्ता के लिए बहुत कम सहायता वाला है क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने उक्त निर्णय में सार और सारंश सिद्धांत पर विचार किया था।

55. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम केरल राज्य एवं अन्य** (सुप्रा.), के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा रखा गया है। इस न्यायालय ने पाया कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुद्दा केरल सामान्य बिक्री कर अधिनियम 1963 की

धारा 26ख पर विचार करने के संबंध में था जिसमें डीलर की संपत्ति पर वैधानिक प्रथम प्रभार का प्रावधान किया गया है, क्या उन्हें बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं जैसे सुरक्षित लेनदारों के पक्ष में बनाए गए अधिकारों पर प्राथमिकता मिलेगी। उच्चतम न्यायालय ने पाया कि केरल सामान्य बिक्री कर अधिनियम, 1963 और बैंकों और वित्तीय संस्थानों को ऋण की वसूली अधिनियम, 1993 (संक्षेप में 'डीआरटी अधिनियम') और वित्तीय परिसंपत्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूतिकरण और सुरक्षा हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में 'प्रतिभूतिकरण अधिनियम') के प्रावधानों के बीच कोई असंगति नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि डीआरटी अधिनियम और प्रतिभूतिकरण अधिनियम बैंकों, वित्तीय संस्थानों और अन्य सुरक्षित लेनदारों के पक्ष में पहला आरोप सृजित नहीं करते हैं और बॉम्बे एक्ट की धारा 38सी और केरल एक्ट की धारा 26ख धारा में निहित प्रावधान भी डीआरटी अधिनियम और प्रतिभूतिकरण अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है जिससे कि डीआरटी अधिनियम की धारा 34(1) या प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 35 में निहित गैर-अस्थिर खंडों को आकर्षित किया जा सके।

56. यह न्यायालय **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम केरल राज्य एवं अन्य (सुप्रा.)** के उस निर्णय के बाद पाता है कि संसद ने दोनों अधिनियमों में संशोधन किया है और वित्तीय संस्थानों या बैंकों आदि जैसे सुरक्षित लेनदारों को अब राज्य बकाया/मुकुट के ऋण पर अधिमान्य अधिकार दिया गया है। इस न्यायालय की विनम्र राय में, विद्वान महाधिवक्ता द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया, वह उनके लिए बहुत कम सहायता वाला है।

57. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा **जयसिंथ डाइकेम एवं अन्य बनाम मेवाड़ टेक्सटाइल मिल्स लिमिटेड ने एआईआर 1988 राजस्थान 16** में रिपोर्ट किया गया, के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया गया है। इस न्यायालय ने पाया कि न्यायालय के समक्ष मुद्दा राजस्थान राहत उपक्रम (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1961 के प्रावधानों पर विचार करने के संबंध में था और यह कि क्या किसी 'कार्यवाही' में समापन याचिका शामिल होगी या इस न्यायालय के समक्ष लंबित नहीं होगी। यह निर्णय विद्वान महाधिवक्ता के लिए बहुत कम सहायता वाला है।

58. तदनुसार, इस न्यायालय ने पाया कि आवेदक-राज्य को अन्य सुरक्षित लेनदारों पर उनके बकाया भुगतान के लिए प्राथमिकता देने का दावा मंजूर नहीं किया जा सकता है। तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उनके आवेदन अपास्त किये जाते हैं।

(अशोक कुमार गौड़), न्यायमूर्ति

Solanki DS, PS

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म राजभाषा सेवा संस्थान द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।